असंगत नाटक : परम्परा और विकास

डॉ० रमेश प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर ,हिन्दी विभाग
श्री जे० एन० पी० जी० कॉलेज ,
लखनऊ,उत्तर प्रदेश
मोबाइल नंबर -8317009217
ईमेल –drrameshjigyasa@gmail.com

साहित्य का जीवन से सीधा संबंध होता है।जीवन की आशा - निराशा और आकांक्षा का संबंध भी इससे जुड़ा होता है। समाज में घट रही घटनाएं साहित्य में स्पष्ट प्रतिबिंबित होती हैं। साहित्यकार का दायित्व होता है कि वह जीवन मूल्यों की स्थापना करे और एक श्रेष्ठ मानव मूल्य का उदाहरण अपने साहित्य के माध्यम से पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करे। देशकाल परिस्थितियों में अनवरत बदलाव देखा जाता है जो प्रकृति का नियम भी है। साहित्य में भी समय – समय पर बदलाव होते रहते हैं। वैदिक संस्कृत से लेकर अब तक बदलते साहित्य इसके प्रमाण हैं।असंगत नाटक इसी बदलाव की एक कड़ी है जो दो विश्व युद्धों की विभीषिका और नये मानव मूल्यों की स्थापना का प्रतिफल है। असंगत नाटक जीवन को देखने जानने परखने का एक विशेष दृष्टिकोण है और जीवन के नए मूल्य भी प्रस्तुत करता है। यह नाटक पाश्चात्य नाट्य संबंधी गतिविधियों के प्रभाव का प्रतिफलन है। विश्व पटल पर बीसवीं सदी का प्रारम्भ कई मायनों में महत्त्वपूर्ण रहा। औपनिवेशिकवाद चरम पर था विश्व, युद्ध की विभीषिका की ओर बढ़ रहा था जिसका परिणाम प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में सामने आया। भारत भी अपने अस्तित्व की लड़ाई धारदार तरीके से प्रारम्भ कर चुका था। गांधी जी जहां शांति और अहिंसा के मार्ग पर चलकर देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे वही सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे अनेक क्रांतिकारी स्वतंत्रता सेनानी अपने देश के लिए जान की बाजी लगा रहे थे। भारत ही नहीं विश्व के अनेक देश औपनिवेशिकता के विरुद्ध पूरी ताकत से लड़ रहे थे। इन्ही संघर्षों के बीच प्रथम एवम् द्वितीय विश्व युद्ध जैसी विभीषिका से संपूर्ण विश्व गुजरा। द्वितीय विश्व युद्ध तक आते -आते विश्व पटल पर सामूहिक विघटन, मोहभंग, कुंठा,संत्रास और मानव मूल्यों के खण्डित होने की अवधारणाएं स्पष्ट नजर

आने लगी। फ्रांस की राज्य और औद्योगिक क्रांति ने जहां विश्व को विज्ञान के माध्यम से एक नवीन दिशा दी वही इसी विज्ञान से मानव समाज एवम् मानव संस्कृति के विनाश का मार्ग भी प्रशस्त किया। द्वितीय विश्व युद्ध की क्रूरता एवम् कुरूपता ने ऐसा भद्दा चेहरा पेश किया कि यथार्थ मिथ्या लगने लगा। डॉ विपिन कुमार अग्रवाल लिखते हैं –" जो अकल्पनीय भयंकरता युद्ध ने दिखाई थी उसका चेहरा इतना भद्दा और कुरूप था कि जीवन का सामान्य यथार्थ उसके सामने झूठा पड़ गया। इसीलिए इस युग के कलाकारों ने प्रतीत यथार्थ को तोड़कर जीवन की इस कुरूपता और आंतरिक विसंगति को संप्रेषित करने की चेष्टा की। प्रतीत यथार्थ को तोड़ने की इस प्रक्रिया में इस युग के कलाकारों को स्वीकृत काव्य रूपों का भी खंडन करके नए अभिव्यक्ति माध्यमों की खोज करनी पड़ी। हमारे जीवन में घटनाएं किसी कथानक के अनुसार नहीं घटती।[1] संभवतःइन्ही कारणों से स्वीकृत नाट्य परम्परा (कथा और चरित्र के माध्यम से प्रचलित नाटक) को अस्वीकार करना पड़ा और नाटक कथा और नायक विहीन हो गए। असंगत नाटककारों को इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा कि अब परंपरागत नाटकों के माध्यम से यथार्थ को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अब समय आ गया है कि हम पाठक को यथार्थ से रुबरू कराये ना की सुखांत से,सब कुछ परोसने(कथा, चरित्र, अभिनय, देशकाल, उद्देश्य) के स्थान पर इन नाटककारों ने उद्देश्य को ही प्राथमिकता दी।

असंगत शब्द का प्रयोग – यह शब्द अंग्रेजी के 'एब्सर्ड' (ABSURD) का पर्यायवाची है। जो पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी में आया। बृहत अंग्रेजी कोश में एब्सर्ड को –असंगत, विसंगत,अनर्थक, अर्थहीन, अनुचित अयुक्त के रूप में माना गया है।[2] मानक हिन्दी कोश ने भी एब्सर्ड को–अनर्थक,अयुक्त,असंगत,न्यायविरुद्ध,उटपटांग, तर्कहीन,मूर्खतापूर्ण,हास्यास्पद, वाहियात, लचर,बेतुका के रूप में व्याख्यायित किया गया है।[3] मानक हिन्दी कोश के प्रथम खण्ड में असंगत शब्द को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है –

1–जिसकी किसी से संगति या मेल न बैठता हो।

2–जो प्रस्तुत विषय के विचार से उपयुक्त अथवा समाचीन न हो।[4]

डॉ0 गोविंद चातक के शब्दों में –"असंगत अथवा एब्सर्ड का अर्थ होता है विषम स्वर होना, सामंजस्यहीन,अतार्किक,असंबद्ध,उल जलूल और हास्यास्पद होना।[5]

एब्सर्ड नाटक की पाश्चात्य परंपरा- एब्सर्ड शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मार्टिन एसलिन ने किया। उन्होंने इसके दार्शनिक पक्ष पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए नाटक के सन्दर्भ में सन् 1961 में इस शब्द का प्रयोग पहली बार किया।[6] 'द पेंगुइन डिक्शनरी आफ थियेटर' 1966 में जान रसेल टेलर का मत है कि सन् 1950 के बाद उन नाटककारों का समूह जो अपने को किसी खास स्कूल का नहीं मानते हैं और विचार ,चिंतन, विषय और फार्म की दृष्टि से नाटक में बदलाव चाहते हैं,एब्सर्ड नाटककार हैं।[7] असंगत नाटककार आयनेस्को ने असंगत नाटक पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि असंगत उद्देश्य हीनता है।"ABSURD IS THAT WHICH IS DEVOID OF PURPOSE"[8]एब्सर्ड थियेटर को विकसित करने वाले मुख्य रचनाकारों में इब्सन,बेकेट,ब्रेख्त,यूजीन,आयनेस्को, ज्यों जेने,सार्त्र,एडवर्ड आलवी,हैराल्ड पीटर आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटककारों ने परम्परा से चली आ रही नाट्य अवधारणा एवं विषय-शिल्प को एक सिरे से नकार दिया और असंगत नाट्य मंच में एक नया प्रयोग किया। इन नाटककारों के मूल उद्देश्य में अभिशप्त मानव है जिसकी आस्थाएं टूट चुकी हैं, जिन्दगी एक नकार से प्रारम्भ होकर दूसरे नकार पर दम तोड़ देती है,समस्त मानवीय मूल्य निरर्थक और बेतरतीब नजर आने लगते हैं, ऐसे में कला के प्रति सकारात्मकता का भाव कब तक टिका रहेगा। एब्सर्ड नाटककारों ने विवश होकर नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया। डॉ.सुषमा बेदी के शब्दों में- "इन नाटककारों में भी सारे मानवीय सम्बन्ध,जीवन स्थितियां निरर्थक बेतुके होकर अभिव्यक्त हुए हैं। इन्होंने सारी स्थितियों को'पैरोडी'या 'आयरनी'के माध्यम से उभारा है। ऐसे में उसे नाम की भी जरूरत नहीं होती। वह'आदमी',औरत' या क,ख,ग कुछ भी हो सकता है।"[9]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों से एब्सर्ड नाटक का जन्म हुआ। इसके प्रमुख नाटककारों में- सैमुअल बैकेट,यूजीन आयनेस्को,इब्सन, ज्यों जेने,सार्त्र,एडवर्ड आलवी,हैरोल्ड पीटर आदि प्रमुख हैं।

सैमुअल बैकेट- एब्सर्ड नाट्य परंपरा में बैकेट द्वारा रचित'वेटिंग फॉर गोदो' सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक है। इस नाटक को 1969 में नोवेल पुरस्कार भी मिला है। यह नाटक मंचन की दृष्टि में एक सफल नाटक रहा है। बैकेट के इस नाटक का प्रभाव उस युग के लगभग सभी एब्सर्ड नाटक एवं नाटककारों पर पड़ा। इस नाटक में मुख्य दो पात्र ब्लादिमीर और एस्ट्रागन और एक काल्पनिक पात्र गोडोट है। इसमें कथावस्तु जैसी कोई

चीज़ नहीं है। एक वृक्ष के नीचे दो भटकते राही गोडोट की प्रतीक्षा करते करते हैं जो निष्फल और अंतहीन है। इन राहगीरों को ऐसा लगता है कि गोडेट ही गाड (भगवान) है। इस प्रकार प्रतीक्षा के दौरान वे ऊल- जलूल हरकते करते हैं जैसे- वाद-विवाद करना, खेलना, व्यायाम करना, आपस में हैट बार- बार बदलना और यहां तक की पेड़ से लटककर आत्म हत्या तक कर लेने का विचार बना डालते हैं। यह सिर्फ इसलिए की भयानक सन्नाटे को कैसे दूर किया जाए। इस नाटक को पढ़ने के उपरान्त ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान सन्दर्भ में मानव के अस्तित्त्व का खतरा बढ़ चुका है आज अस्तित्व बचाना सबसे बड़ी चुनौती है। बैकेट का एक और महत्त्वपूर्ण एब्सर्ड नाटक है 'आखिरी खेल'। इसमें केवल चार पात्र हैं। हैम, क्लोव, मेग और नेल। लकवा के कारण हैम चल फिर नहीं सकता है और नेत्रहीन भी है। नेल और नेग वृद्ध हैं। उनका नौकर क्लोव कर्तव्यनिष्ठ और आज्ञाकारी है। हैम एक सफल कहानीकार बनना चाहता है पर उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती। हैम का मानना है कि जीवन में सदैव आगे बढ़ते रहना चाहिए। कभी-कभी जीवन में हार भी होती है। हैम आराम कुर्सी पर बैठ कर इन्हीं विचारों में खो जाता है। इस नाटक में हैम सांसारिक विषय भोग से अतृप्तमन का प्रतीक है और क्लोव बुद्धि का।[10]

यूजीन आयनेस्को- ' रियलिटी इन डेथ' इनका प्रमुख एब्सर्ड नाटक है जिसमें आयनेस्को ने वर्तमान समाज और विचारों पर तीखा व्यंग किया है। आयनेस्कों का मानना है कि - " खामोशी ही जीवन्त यथार्थ है। उसे लच्छेदार भाषा में ढक देना एक जुर्म है। उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से व्यक्ति और परिवार, परिवार और समाज के बीच रहने वाले स्थाई विचारों पर भी करारा व्यंग किया है। 'द लैसन' भी आयनेस्कों का महत्त्वपूर्ण एब्सर्ड नाटक है जिसमें उन्होंने अध्यापक के क्रूर अधिकार भावना और विद्यार्थी की न सोच सकने वाली दयनीयता पर कुठाराघात किया है। उनका मानना है कि दिन-ब-दिन भाषा में बदलाव के कारण वह अरुचिकर और कठिन होती जा रही है।[11] इसके अतिरिक्त 'द चेयर्स' नाटक में आयनेस्कों ने वृद्ध दंपत्ति के मधुर स्मृतियों को उभारने का प्रयास किया है जबकि ' रायनो सेरोस' नाटक का नायक बेरेंजर एक ऐसी दुनिया में फंस गया जहां हर व्यक्ति एक 'गैडा' है। यह नाटक नाजीवादी प्रवृति पर तीखा व्यंग करता है।[12]

एडवर्ड आलवी-आलवी ने 'हूज अफ्रेड आफ वर्जीनिया वुल्फ' द अमेरिका, द न्यू स्टोरी जैसे महत्त्वपूर्ण नाटक लिखे। इन नाटकों में समसामयिक समाज से खिन्नता, जड़ता और

नैतिक मानवीय मूल्यों के विघटन को बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से रेखांकित किया गया है। विश्व युद्ध के दौरान युद्ध में पिकनिक मना रहे सिपाहियों का वर्णन है जो विश्व की बड़ी शक्तियों पर करारा व्यंग है। सिपाही युद्ध और विध्वंश नहीं चाहते वह सुख शांति से जीवन जीना चाहते हैं, उन्हें आंनद चाहिए, विध्वंश नहीं, वे अपनों के बीच रहना चाहते हैं। उदाहरणार्थ–

तेपान– अच्छा यह ठीक है, तो क्यों न लड़ाई बंद कर दी जाए

जापो– यह कैसे संभव है ?

तेपान– सब कुछ संभव हो सकता है। तुम अपने लोगों से जाकर कह दो कि दुश्मन के सिपाही अब लड़ना नहीं चाहते और तुम भी यही मत अपने साथियों से कह देना। बस छुट्टी, सब अपने अपने घर लौट जायेंगे

जेपो–वाह मजा आ गया।[13]

हैराल्ड पीटर–पीटर ने दो महत्त्वपूर्ण नाटक लिखे–' द बर्थ डे पार्टी' एवं 'केयर टेकर' इन नाटकों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक समस्याओं को उतनी महत्ता नहीं दी जितनी व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्याओं को ।

हिन्दी में असंगत नाटक की परम्परा–हिन्दी नाट्य परम्परा का इतिहास बहुत पुराना है। नाटकों का प्रचलन कब हुआ इसका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। आचार्य भरतमुनि (ईस्वी पूर्व 300) ने अपने 'नाट्यशास्त्र ' नामक ग्रन्थ में नाटक के विभिन्न पक्षों का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विवेचन करते हुए उसे चाक्षुष यज्ञ कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि भरतमुनि से पूर्व यह परम्परा समृद्ध रही होगी। तभी उनको नाटक के विभिन्न पक्षों पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। संस्कृत साहित्य में नाटक की परम्परा अश्वघोष से प्रारम्भ होती है जो कालिदास , भवभूति आदि से होती हुई हिन्दी तक पहुँचती है। हिन्दी में मध्यकाल में पद्यात्मक नाटक लिखे गये। नाट्य लेखन की दृष्टि से यह युग बहुत समृद्ध नहीं रहा। वस्तुतः हिन्दी नाटकों का आरम्भ भारतेन्दु युग में हुआ किन्तु इस युग में लिखे हुए नाटक भारतीय नाट्य शिल्प से विशेष प्रभावित रहे। उत्तर भारतेन्दु युग में नाटक हिन्दी साहित्य की एक सशक्त विधा बन गया और उसमे वस्तु , शैली और शिल्प की दृष्टि से तरह -तरह के बदलाव हुए और तरह तरह की पद्यतियों का जन्म हुआ। असंगत नाटक इसी बदलाव और पद्धति की परिणति है। इस नई पद्धति के नये नाटककार के रूप में भुवनेश्वर का नाम लिया जाता है।

भुवनेश्वर ने 1938 में 'ऊसर ' और १९४८ में 'तांबे के कीड़े ' नाटक लिखे जिसे पाश्चात्य साहित्य में 'एब्सर्ड ' नाटक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। दुर्भाग्य का विषय है कि भुवनेश्वर के नये प्रयोग के नाटकों का हिंदी साहित्य आलोचना में जमकर खिल्ली उड़ाई गई किन्तु जब 1952 में सैमुएल बैकेट ने 'वेटिंग फार गोदो ' लिखा ,तब हिन्दी लेखकों विशेषकर नाटककारों का रुझान भी असंगत नाटकों के कथ्य और शिल्प की ओर बढ़ा। यह हमारी विकृत और औपनिवेशिक (गुलामी) मानसिकता को दर्शाता है | हम आदी हो चुके थे गुलामी के,नक़ल के| यह हमारे लिए गर्व का विषय है कि साहित्य की यह इकलौती विधा है जिसका जन्म या सृजन भुवनेश्वर ने किया | असंगत नाटक मूलतः विश्व युद्ध की विभीषिका ,नरसंघार ,अमानवीयता और गिरते मानवीय मूल्यों का दर्पण है | जिसे उसी की भाषा में नाटककार दर्शक के सामने पेश कर देता है जैसा भुवनेश्वर ने ताँबे के कीड़े के माध्यम से किया है| विस्तार की दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दी में असंगत नाटक का विकास छठे दशक में ही दिखाई पड़ता है| द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव जितना विश्व के अन्य देशो पर पड़ा उतना ही भारत पर भी पड़ा | पूरा का पूरा विश्व ही विसंगतियों -विडंबनाओं और क्षरित होते मानवीय मूल्यों की चपेट में आ गया था |नाटक ही नहीं अपितु कविता, कहानी, उपन्यास सभी विधाओं में इस असंगत की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है | 1946 में दिनकर का ' कुरुक्षेत्र' और 1954 धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' कविता की दृष्टि से नवीन विसंगति को उजागर करता दिखाई पड़ता है|जहां गिर रहे , टूट रहे, मानव मूल्यों की चिंता है| कहने का तात्पर्य यह है कि यह विसंगति मात्र नाटक में ही नहीं थी , वरन साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आ चुकी थी | भुवनेश्वर ,लक्ष्मी नारायण लाल ,विपिन कुमार अग्रवाल,सत्यब्रत सिन्हा ,लक्ष्मीकांत वर्मा ,मुद्राराक्षस जैसे अनेक असंगत नाटककारों ने एक नए नाटक के फार्म को तलाशा और अनेक नए प्रयोग भी किये , यद्यपि इन नाटककारों को जितनी सफलता मिलनी चाहिए या लेखकों ने आशा की थी उतनी नहीं मिल पाई | इन नाटकों का प्रयोग बहुत देर हो पाया जिसके परिणाम स्वरूप भुवनेश्वर को वह ख्याति नहीं मिल पाई जिसके वे हक़दार थे | हिन्दी में सन 1960 के बाद असंगत नाटक अधिक लिखे गये और चर्चित भी रहे | विपिन कुमार अग्रवाल ने भुवनेश्वर को नए आधुनिक नाटक का जन्मदाता भी माना है |[14] पाश्चात्य नाटककारों का प्रभाव भी हिन्दी नाट्य लेखन पर पड़ा जो बहुत व्यापक न होते हुए नवीन है| इस सन्दर्भ में डॉ गिरीश रस्तोगी का कथन है -"यद्यपि नए नाटककारों और पश्चिम में एब्सर्ड नाट्य धारा के आरम्भ होने से पहले ही हिन्दी में भुवनेश्वर ने वर्तमान युग की ट्रेजडी को और उसके विरुद्ध निश्चित सांचे में ढली हुई उसकी अभिव्यक्ति ,नाटक के विरोधाभास को अनुभव कर लिया था | उन्होंने महसूस किया है की विवेक और तर्क तीसरी श्रेणी के कलाकारों के चोर दरवाजे हैं|उन्होंने विश्व मानव की पीड़ा , अव्यवस्था और विघटन ,भय और

निराश ,टूटते मानवीय रिश्तों के दर्द को अनुभव किया जो उनके "ताँबे के कीड़े " में तीखेपन के साथ व्यक्त हुए हैं | ताँबे के कीड़े की तिलमिलाहट,आदमी की बेचैनी, उलझन,अकेलापन, तनावपूर्ण वातावरण ,शिल्प का नयापन ,आक्रामक चित्र एब्सर्ड नाट्य परंपरा का सशक्त उदाहरण है |[15] पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य परम्परा का प्रभाव 1960 के बाद के हिंदी नाटककारों पर भी पड़ने लगा | हिंदी में भुवनेश्वर ,विपिन कुमार अग्रवाल और लक्ष्मीकांत वर्मा को एब्सर्ड त्रयी के रूप में देखा जाने लगा था| 1945 से 1960 का दशक विश्व के साथ भारत में भी सामाजिक ,राजनीतिक और आर्थिक विषमताओं से भरा था | देश स्वतंत्र हुआ पर व्यक्ति स्वतंत्र नहीं हुआ, अस्मिता की जो समस्याएं पहले थी वे आज भी बनी रही बल्कि मूल्यों में गिरावट अधिक आयी | इन विसंगतियों -विडंबनाओं और मूल्यों की गिरावट को परम्परागत नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत कर पाने में इस युग के नाटककार अपने को असमर्थ पाने लगे | सारी दुनिया में जो विवेक और संतुलन के प्रति विश्वास था वह टूटने लगा | विकास और विज्ञान के बीच में मनुष्य बर्बरता और हवस के कारण पागल होने लगा | विश्व युद्ध में सारा बौद्धिक वर्ग हिस्सा ले रहा था ,जो रेडियो संगीत सुलभ कराता था वह अब बम गिरा रहा था | सारे रिश्ते नाते उलट पलट गए | सब कुछ निर्माण कर लेने के स्थान पर "सब कुछ मिटा देने के भय " ने स्थान ले लिया था | एक अजीब स्थिति पैदा हो चुकी थी जिसमें चिड़चिड़ापन महसूस होने लगा था| डॉ0 विपिन कुमार अग्रवाल के शब्दों में -" एक अजब और अनहोनी तनाव के बीच बेहद चिड़चिड़ेपन के साथ जीना है|सब ने इसको महसूस किया|सबने पाया की यथार्थ ,माने गए यथार्थ से भिन्न है | उसमे न कथानक है।,न नायक है ,न व्यवस्था है ,न निश्चित मूल्य है,न आत्म सम्मान है | आज इंसान चाँद की ओर जा रहा है और इंसानियत रसातल की ओर|अजब हैरानी है|"[16] इन परिस्थितिओं में परम्परागत नाटकों का सृजन जिनके मूल में प्रेम,त्रिकोण प्रेम,राजा-रानी की कहानी,विरह की कथा ,मनबहलाव और मनोरंजन के साधन एकत्र करना असंभव हो गया है | इस युग के नाटककारों ने इसे महसूस किया और अपने आपको बदला | इस युग के नाटककारों की पृष्ठिभूमि को और स्पष्ट करते हुए डॉ जयदेव तनेजा लिखते हैं - " महायुद्धों के भयंकर नरसंहार ने जीवन और जगत के पीछे किसी दैवी शक्ति की तर्कसंगत भूमिका को अविश्वसनीय बना दिया था| मानव मूल्य नैतिकता और मर्यादा खोखले शब्द मात्रा रह गए थे | मानव भविष्य आशा ,आस्थाविहीन एक घने अँधेरे के सिवा कुछ भी नहीं था| अस्तित्ववादी जीवन दर्शन और ज्यां पाल सार्त्र तथा आल्वेयर कामू जैसे विचारक - रचनाकार उसी दौर की देन हैं|"[17]

हिंदी के प्रमुख असंगत नाटककार - हिंदी के प्रमुख असंगत नाटककारों में - भुवनेश्वर ,विपिन कुमार अग्रवाल,लक्ष्मीकांत वर्मा ,मणिमधुकर ,मुद्राराक्षस ,सत्यब्रत सिन्हा ,हमीदुल्ला ,ब्रजमोहन शाह ,रमेश बक्षी आदि प्रमुख हैं जबकि लक्ष्मीनारायण लाल ,सुरेंद्र वर्मा,रामेश्वर प्रेम ,त्रिपुरारी शर्मा ,शम्भुनाथ सिंह ,पंडित गिरिराज किशोर ,राजेश जोशी ,असगर वजाहत ,विभु कुमार आदि पर किसी न किसी रूप में एब्सर्ड की छाया दिखाई देती है |

भुवनेश्वर प्रसाद - भुवनेश्वर को हिंदी असंगत नाटक का जन्मदाता माना जाता है| भुवनेश्वर ने जब साहित्य लेखन प्रारम्भ किया था उस समय तक हिंदी साहित्य व्यक्तिवाद अर्थात छायावादी प्रवत्ति से निकल नहीं पाया था जबकि भुवनेश्वर समय से आगे चलने और सोचने वाले साहित्यकार थे|उनका पहला एकांकी संग्रह 'कारवाँ ' 1936 में प्रकाशित हुआ जो कथ्य और शिल्प से एकदम नवीन था | भुवनेश्वर एक नए नाटक के प्रयोग की तरफ बढ़ रहे थे किन्तु पूरी तरह से प्रचलित नाट्य परम्परा से अपने को विमुख नहीं कर पाए थे | वे लिखते हैं - "हर प्रेम -समस्या त्रिकोण में बँट जाती है प्रायःसमस्त नाटककार---दो पुरुषों को एक स्त्री के आमने - सामने खड़ाकर संघर्ष उत्पन्न करते हैं। मैंने भी वही किया। "[18] भुवनेश्वर इस परम्परा को बहुत दिनों तक ढो नहीं पाए और प्रचलित प्रेम के त्रिकोण ,वियोगी -वियोगिनी के नाटक या मन बहलाव और मनोरंजन को त्यागकर अपने आपको और नाटक के कथ्य को बदलना प्रारम्भ किया। वे पहले ऐसे नाटककार थे जिसने विश्व युद्ध की विभीषिका को ' तांबें के कीड़े ' के माध्यम से प्रस्तुत किया। इसी के पश्चात् 1947 में जेने का 'द मेड्स ' पेरिस में खेला गया। आयनेस्को का 'बॉल्ड प्रिमोडोना '1950 में मंचित हुआ और 'बेटिंग फार गोदो '1952 में लिखा गया । यद्यपि कथ्य और शिल्प की दृष्टि से ये सभी नाटक नए थे जिसके कारण इनका पाठकों एवं आलोचकों ने उपहास भी उड़ाया जो अमूमन किसी भी नई विधा या दौर के लिए होता है। भुवनेश्वर ने पहली बार अपने नाटक ताँबे के कीड़े में परम्परा से चली आ रही भाषा के स्थान पर हरकत की भाषा का प्रयोग किया। डॉ0 विपिन कुमार अग्रवाल के शब्दों में -" हरकत की भाषा के महत्त्व को जितने गहरे ढंग से भुवनेश्वर ने समझा है उतना उनके समकालीन लेखकों में किसी ने नहीं समझा। उनकी हरकत की भाषा को बिना पहचाने उनका नाटक अजीब ,शिथिल और निर्थक लग सकता है। पर एक बार इससे अवगत हो जाने पर सब कसा हुआ, माने से भरा हुआ , आवश्यक और सही लगने लगता है।' [19] एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

मशरुम पति : -----मैंने उसे कायल कर दिया कि बिना नाश किए बताया जा ही नहीं सकता

(अनाउंसर हँसती है और झुनझुना बजाती है)

थका आदमी : ------- तुमने क्या शब्द कहा ?

थका आदमी : मैं सीटी बजाऊंगा। मैं अपनी ताकत सीटी बजने में ख़त्म कर दूँगा।

मशरुम पति : मैं हर वक्त सोते जागते देखता हूँ और रचता हूँ ------और कायम करता हूँ ---

परेशान रमणी : ---कभी -कभी यह अपने दिमाक को आराम देने के लिए ऊंटपटांग बातें करने लगते हैं -------पागल आया ----देखती नहीं है ,वह सिर्फ ढूढती है -----न जाने क्या और कहाँ -[20]

परम्परागत नाटक से असंगत नाटक कई तथ्यों में अलग दिखाई पड़ता है। परम्परागत नाटककार अपने दायित्व को स्वीकारता था उसके कथ्य और शिल्प में उदात्तता होती थी किन्तु असंगत नाटककारों ने उत्तरदायित्व से पल्ला छाड़ लिया है। डॉ विपिन कुमार अग्रवाल के शब्दों में -" आज न कोई व्यक्तिगत स्तर पर अपराधी है और न उत्तरदायित्व को महसूस करता है। लगता है ,हर घटना सभी को छूती है। उसके लिए हम सभी किसी न किसी अर्थ में उत्तरदायी हैं। अतः आज की त्रासदी अजनबीपन में ,बेतुकेपन में, कल्पनातीत में ,विकृत में ,भाडंपन में व्यक्त होती है,खिलती है। कहानी एक न होकर अनेक हो जाती है ,खो जाती है, यथार्थ की तरह कथावस्तु -विहीन हो जाती है। 'ऊसर ' का गंभीर ट्यूटर हट जाता है और उसके स्थान पर हँसती झुनझुनेवाली 'ताँबे के कीड़े 'में इठलाने लगाती है। " [21] जहाँ 'ऊसर ' बनावटी ड्राइंगरूम की सजावट का काम करता है वही 'ताँबे के कीड़े ' ड्राइंग रूम से बाहर निकल जाता है। कथाविहीन होने के वावजूद भी इस नाटक में व्यंग है ,हास्य है ,उछल कूद है जिसके माध्यम से नाटक अपनी बात मजबूती के साथ पाठक के समक्ष रखता है। 'ताँबे के कीड़े ' के पात्र सवालात पैदा करते हैं जो वीरान सड़कों पर जालों की तरह बिछे रहते हैं। ये मृत्यु से नहीं डरते बल्कि मृत्यु इनके सिरहने लोरियां गाती हैं।

भुवनेश्वर अपने युग के सशक्त और प्रभावशाली नाटककार हैं। परम्परागत नाटकों से सृजन प्रारम्भ करके सीधे नए नाटक (असंगत नाटक) के जन्मदाता बन जाते हैं। प्रचलित शैली और प्रथा से अपने को पूर्णतया मुक्त करते हैं। कथाविहीनता ,हरकत की भाषा और प्रतीकात्मकता इनके नाटकों के मूल में है। भुवनेश्वर पर गंभीर चिन्तनोपरांत पायेगे की वे

अपने समकालीन कवियों ,उपन्यासकारों और नाटककारों से बहुत आगे हैं और आने वाले मूल्यों के प्रति सचेत भी हैं।

विपिन कुमार अग्रवाल -- भुवनेश्वर के बाद हिंदी असंगत नाटककारों में विपिन कुमार अग्रवाल का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने तीन अपाहिज (1969),लोटन (1974),खोये हुए आदमी की खोज (1980) जैसे महत्वपूर्ण नाटकों का सृजन किया। 'तीन अपाहिज' स्वतंत्रता के बाद समाज में उत्पन्न सामाजिक,राजनैतिक,आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न विसंगतियों पर करारा व्यंग है। देश आजाद हो गया व्यक्ति गुलाम है। योजनाएं फाइलों की शोभा बढ़ा रही हैं। भुखमरी, बेरोजगारी ने सामान्य जीवन को अस्त व्यस्त कर दिया है। ऐसे में राजा -रानी की प्रेम कहानियां कौन सुने। विपिन कुमार ने वर्तमान स्थितियों के रेखांकन के लिए असंगत नाटकों के फार्म को ही उपयुक्त समझा। 'तीन अपाहिज' भी कथा विहीन ,चरित्र विहीन नाटक है। नाटक के तीनों पात्र -कल्लू ,खल्लू गल्लू वैशिष्ट्य हीन व्यक्ति है। डॉ इन्द्र नाथ मदन ने इन्हें अनायक कहा है।[22] चिंतन का विषय यह है कि कहा धीरोदात्त पात्र नाटक के नायक होते थे और कहा तीन अपाहिज। विपिन कुमार अग्रवाल ने नायक की चली आ रही परम्परा को तोड़कर एकदम से अपाहिज को काव्य का नायक बना दिया। ऐसा करने के पीछे की मंशा को जरूर जानना होगा। जिस परिवेश में ये नाटक लिखे जा रहे थे वह परिवेश राजनीतिक ,सामाजिक या विश्व पटल पर अपाहिज होता जा रहा था। शासन -सत्ता भ्रष्टाचार में आकंठ डूबती जा रही थी। नाटक के तीनों पात्र गतिहीन हैं। इधर से उधर सरकने के अलावा इनमें कोई गति नहीं है। इस नाटक और इसके पात्रों के माध्यम से नाटककार समाज के कुछ बुनियादी सवालों को उठता है। देश की आजादी का मतलब पूछता है। क्या आजादी अर्थहीन है। 'तीन अपाहिज' पूरा -पूरा भारतीय मनः स्थिति का नाटक है। आजादी के बाद के निकम्मेपन, भ्रष्टाचार ,खंडित आस्थाओं और शब्दजाल की राजनीति से अपाहिज हुआ भारतीय मानस ही इस नाटक के भीतर व्यंग और'आयरनी ' के या विसंगति के स्तर पर उभरता है। नाटक में कद्दू द्वारा एकता के भाव जगाने की बात कहकर नाटककार मानों एकता विचार -मात्र को ही एक वेवकूफी से अधिक महत्त्व नहीं देता और इसी तरह 'आयरनी ' के माध्यम से ही वह बेईमानी को दोस्ती के तर्क से ढंकता और दोस्तों को एक गाली सिद्ध करता हुआ आज के मानवीय सम्बन्धों को अर्थहीन उजागर करता है। [23] नाटक का एक संवाद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

खल्लू : हम कब आजाद हुए ?

कल्लू : यही टिल्लू की उम्र समझ लो।

खल्लू : तो आजाद अभी बच्चा है। हम बच्चा कैसे बन सकते हैं।

गल्लू : आजाद बच्चा नहीं देश है।

खल्लू : देश बच्चा कैसे हो सकता है

कल्लू :अपनी किस्मत से।

(सब इसको मन लेते हैं। फिर भाषण सुनने लगते हैं -" अब हमें काम करना चाहिए। खाली हाथों नहीं बैठना चाहिए| हमारे प्रधानमंत्री का कहना है -आराम हराम है। "[24]

1974 में प्रकाशित 'लोटन ' भी विपिन कुमार अग्रवाल का महत्वपूर्ण असंगत नाटक है। यह तीन अंकों का छोटा सा नाटक है जिसके माध्यम से नाटककार ने वैज्ञानिक युग के अभिशाप को समाज के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत नाटक में डाकगाड़ी जन आंदोलन के प्रतीक के रूप में आयी है। लोटन अकाल पीड़ित क्षेत्र से आया है। यह नाटक अपने लघु कलेवर में भी विशिष्ट है। औद्योगिकीकरण के बीच में आज व्यक्ति किस तरह पिस रहा है,किस तरह घुटन भरी जिंदगी जीने के लिए विवश है नाटक में रेखांकित होता है। भौतिकता के इस युग में मनुष्य का विवेक पूरी तरह से नष्ट होता जा रहा है। उसे समझ में नहीं आ रहा है कि वह किधर जाये और किस मार्ग को चुने जो सचमुच उचित हो, नाटक में प्रयुक्त डाकगाड़ी पटरी से उतरकर जनता में भय का माहौल पैदा कर देती है। इधर से उधर जाती डाकगाड़ी निरर्थक कोशिश करने वाले मनुष्यों का प्रतीक बनकर उभरती है। नाटक पढ़ने के उपरांत ऐसा लगता है की वर्तमान समाज में जीवन जी रहा मनुष्य यांत्रिकता अथवा कृत्रिमता के स्वप्नजाल में फंस गया है।

लक्ष्मीकांत वर्मा -- लक्ष्मीकांत वर्मा आधुनिक हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटककार हैं जिन्होंने हिंदी नाटक की परम्परागत सीमा को तोड़कर उसे नव्य -जीवन बोध और सामाजिक यथार्थ तक पहुंचाया है। स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी नाट्य साहित्य में परम्परा को छोड़ने की आकुलता थी। वर्मा जी ने उसे लक्ष्यकर हिंदी नाटक को आधुनिकता और शिल्प के नए प्रयोगों से समृद्ध किया है। उन्होंने रोशनी एक नदी है ,ठहरी हुई जिंदगी ,तीसरा आदमी,अपना अपना जूता जैसे महत्वपूर्ण असंगत नाटक लिखे ।

रोशनी एक नदी है - वर्मा जी का यह एक असंगत नाटक है जिसमें आज की अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। आज जीवन मूल्यों मे तेजी से बदलाव आ रहा है। मानव और पशु का अंतर समाप्त हो गया है। परम्परागत आदर्श ,मान्यताएं और सिद्धांत आडम्बर और अर्थहीन लग रहे हैं। आज का आदमी संघर्षों में पूरी तरह डूबा है। उसके चारों ओर जुलूस ,शोर ,भीड़ ,हंगामा है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था उसे इनसे मुक्ति नहीं दिला सकती। इसीलिए वह यथास्थिति से विरोध करता है। 'रोशनी एक नदी है ' की कथावस्तु असंगत नाटकों की कथावस्तु के समान विश्रृंखलित है। इसमें परम्परागत नाटकों की इमेज तोड़ने की आकुलता है। नाटक की "अपनी बात " शीर्षक भूमिका में नाटककार ने " रोशनी एक नदी है " को एक विशेष सन्दर्भ की चुनौती की अभिव्यक्ति स्वीकारा है। [25] इस नाटक में बहुत सी घटनाएं एक साथ बिखेर दी गई हैं जिनमें ऊपर से देखने में असंबद्धता है किन्तु उनके मध्य कहीं न कहीं एक सूत्रता भी है। डॉ० गिरीश रस्तोगी के शब्दों में-"नाटक का यह बिखराव भी बहुत कुछ कहना चाहता है। यह भी एक टेकनीक है। बिखराव के माध्यम से ही कथा को प्रस्तुत करने की कोशिश प्रभावित करती है। सारे बिखराव के बीच में भी नाटक में कविता जैसी लय है जो विसंगत नाटक की विशेषता है।[26]

ठहरी हुई जिंदगी - इस नाटक के माध्यम से वर्मा जी ने परम्परागत रामलीला नाटकों के पात्रों को लक्ष्यकर व्यंग किया है। नाटक की कथावस्तु में सुसम्बद्धता न होकर बिखराव है। परम्परागत कथानक और चरित्रों को इसमें आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। वर्मा जी ने इसे एक प्रयोग माना है। उनके अनुसार -" युग की पीड़ा और संवेदना नित्य की विशुद्ध लीला को कितना यथार्थ बना सकतें हैं और नित्य में अनित्य का तथा अलौकिक में लौकिक का ,वेद में लोक का और प्रतिष्ठित में अप्रतिष्ठित का कितना व्यंग व्यंजित कर सकती है ,'ठहरी हुई जिंदगी ' में केवल उनकी संभावनाओं को ही आज के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने की चेष्टा है। इसमें रखा कुछ नहीं। प्रयोग भी प्रयोग के अहम से नहीं ,अपनी सहजता से उपजा है। [27]

अपना अपना जूता - अपना अपना जूता वर्मा जी का असंगत नाटक है जिसमें नाटककार ने आज की सामाजिक व्यवस्था पर गहरा कशाघात किया है। आज आदमी का खून मच्छर के खून की तरह सस्ता हो गया है जो अमानवीय है। पुलिस अपराधियों को आश्रय देती है ,दलाली करती है और पैसे वसूलती है। पुलिस में भ्रष्टाचार और समाज में गुंडागर्दी चरमसीमा पर है। आज ऐसे वातावरण में राम राज्य का स्वप्न केवल स्वप्न है। नाटक की समाप्ति पर व्यंगात्मकता है -

अपना जूता सब का जूता

सब का जूता अपना जूता।

इस नाटक में घटनाओं की सुसंबद्धता नहीं है ,उनमे बिखराव है। घटनाओं द्वारा नाटककार ने अपने चतुर्दिक व्याप्त भ्रष्टाचार और रामराज्य के दिवास्वप्न को अभिव्यंजित किया है। संपूर्ण विसंगतियों के चित्रण के साथ नाटक वहां समाप्त है जहा जिन्दा रहना मानव की विवशता है।

तीसरा आदमी -तीसरा आदमी वर्मा जी का असंगत नाटक है जो आज की विसंगतियों को चित्रित करने में समर्थ है। इनके कथानक में क्रमवद्धता का अभाव है ,केवल घटनायें ही एक साथ एकत्रित की गयी हैं। शीर्षक के तीसरे आदमी के विषय में दर्शक या पाठक के मन में जो जिज्ञासा उत्पन्न होती है उसकी समाप्ति मोना को लिखे गये पत्र से होती है जिसमें तीसरे आदमी के खून का वर्णन है।

वर्मा जी का नाटक के क्षेत्र में प्रवेश हिंदी नाटक के उत्थानवादी युग में हुआ। उस समय भुवनेश्वर नए नाटक के जन्मदाता के रूप में अवतरित हो चुके थे। भुवनेश्वर ने जब लिखना प्रारम्भ किया तब हिंदी नाट्य साहित्य व्यक्तिवाद,आदर्शवाद, रोमांसिकता से मुक्त नहीं हो पाया था। उसके रूप बंध और रंग -विधान पर जाने -अनजाने पारसी थियेटर अपना प्रभाव जमाये हुए था। लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने नाटकों में नाटक की निर्धारित' इमेज 'को तोड़ा है| वे खूब सोच समझकर इस निर्णय पर पहुचें हैं की अब ऐतिहासिक नाटक या " मैलोड्रामा " लिखने का समय नहीं है -अब समय है वर्त्तमान के ज्वलंत प्रश्नों से सीधे मुड़भेड़ का। इसमें वे सेक्स और अपराध के चालू मुहावरों को नहीं लाना चाहते हैं। वे जिए और भोगे जीवन की उन कटु सच्चाइयों को जो समाज में व्याप्त हैं ,अपनी रचनाओं में बड़े प्रखर रूप में रूपायित करना चाहते हैं। अपने समकालीन नाटककारों -मोहन राकेश ,लक्ष्मी नारायण लाल , विपिन कुमार अग्रवाल, ब्रजमोहन शाह ,सत्यब्रत सिन्हा आदि की तरह ही वर्मा जी ने जीवन की विसंगतियों ,विडंबनाओं ,बिद्रूपताओं को सब के सामने उजागर किया। डॉ कृष्णदत्त पालीवाल का मत है -"इस कार्य के लिए वे बंधे एवं लीकबद्ध नाटक का रास्ता छोड़ कर नए रास्ते की तलाश करना चाहते थे। मुक्त नाटक के लिए वे नया ढांचा निर्मित करते और बराबर अपने ही बने ढांचे को तोड़ते चलते रहे हैं। 'रोशनी एक नदी है 'वर्मा जी का एक ऐसा नाटक है जिसमें घिरती भीड़ का कोलाहल है जो भीड़ की राजनीति से जन्मा है। नाटककार ने

चित्रों और कल्पनाओं के माध्यम से उस स्थिति का परिचय कराना चाहा है। सारा नाटक एक पीड़ामय विस्फोट लगता है -एक विसंगति का डबडबाई आँखों से दर्शन है। "[28] यथार्थ के बीच हास्य व्यंग,उछलकूद ,बेतुकापन के अनोखे वातावरण की सृष्टि करके वर्मा जी ने सम -सामयिक त्रासदी को और गहराई दी है तथा मर्मस्पर्शी बनाया है। वर्मा जी के नाटकों में एक आकर्षण है जो दर्शकों को अनायास अपनी ओर खींचता है ,उछलता है ,दुनिया के शोरगुल से अलग करता है और एक ऐसे पात्र का सृजन करता है जिसमे पूरा नाटक समाया हुआ दिखता है। परम्परागत नाटक आज की विसंगतियों के रेखांकन में सफल नहीं हो सकते। विसंगतियों के लिए नाट्य परम्परा में भी विसंगति अपेक्षित है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इब्सन,चेखव,गोर्की जेने ,सार्त्र, बेकेट ,कामू आदि अनेक पश्चिमी नाटककारों के अनुवादों एवं प्रदर्शनों के प्रति हिंदी नाटककार जागरूक हो गया था और उसने नवीन नाट्य सम्भावनाओं को पहचाना था। उसने सोचा कि नाटक को पैसा उगाने का नहीं वरन जन मानस को जगाने का माध्यम बनाना होगा। लक्ष्मीकांत वर्मा और उनके समकालीन नाटककारों ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि केवल पश्चिम की नक़ल करने से काम नहीं चलेगा उसमें और बदलाव जरुरी है। बदलती हुई इस चेतना का परिणाम हुआ की वर्मा जी ने ' 'रोशनी एक नदी है ' और 'आदमी का जहर ' जैसे नये आधुनिक बोध के एब्सर्ड नाटक लिखे जो रंगमंच पर अनेक बार मंचित हुए। 'रोशनी एक नदी है 'नाटक में कहे या बोले गए शब्द कम हैं, घटनाएं अधिक हैं ,एक गहरी और अनकथ तलाश है रास्ते की नहीं गति की। कुल मिलाकर उसमें यह स्वीकृत घोषणा है कि हम सब एक स्थिति में नहीं रह सकते हैं ,यथास्थिति से विद्रोह आवश्यक है। [29] लक्ष्मीकांत वर्मा कथ्य और शिल्प के स्तर पर एक प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। उन्होंने अपने नाटकों में अंकों और दृश्यों का संयोजन पूर्वग्रह से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप में किया है। अंक एवं दृश्य विधान की प्राचीन परम्परा के वे कायल नहीं हैं। इसलिए उनके अधिकांश नाटक एक ही अंक में समाप्त हो जाते हैं। हिंदी असंगत नाट्य - परम्परा की बृहत्रयी में -भुवनेश्वर ,विपिन कुमार अग्रवाल लक्ष्मीकांत वर्मा

मणि मधुकर --मणि मधुकर हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। उन्होंने हिंदी नाटक को जहाँ ओर प्रचलित दायरे से मुक्त कराया, वही दूसरी ओर नये नाटकों को पारम्परिक नाट्य संस्कारों से भी जोड़ने का सार्थक प्रयास किया। वे एक लोकधर्मी नाटककार हैं किन्तु आधुनिकता के प्रभाव ने उन्हें असंगत नाटक लिखने पर विवश कर दिया। वे कथ्य का चुनाव तो लोक जीवन से ग्रहण करते हैं किन्तु उसका रूपायन एब्सर्ड नाटक के फार्म में प्रस्तुत करते हैं। मणि मधुकर के महत्वपूर्ण नाटकों में 'रस गन्धर्व ' (1975) काफी चर्चित रहा है। यद्यपि नाटक में कथानक का अभाव है ,जैसा कि समस्त असंगत नाटकों में होता है। यह नाटक धारा नगरी के राजा भोज की

प्रजा पर केंद्रित है जो आधुनिक जीवन को अभिशप्त प्रदान करता है। नाटक में चार पात्र हैं –अ, ब स ,द जिनका परिचय बढ़ई , मजदूर ,राहगीर ,दर्जी के रूप में आता है। इस नाटक में एक अप्सरा और पांच गन्धर्व हैं जो शाप वश मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं और नरक यातना भोगते हैं। अप्सरा राजा भोज की पुत्री है और ये पांचों यातनाग्रस्त गन्धर्व राजा भोज की जेल में बंद हैं। इन पात्रों के माध्यम से नाटककार ने वर्तमान विसंगतियों -विडम्वनाओं को आयरनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। नाटक पढ़ने के उपरांत ऐसा लगता है कि नाटककार ने वातावरण में व्याप्त घुटन का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। संपूर्ण नाटक एब्सर्ड फैंटेसी के रूप में आगे बढ़ता है जिसमें नाटककार स्वयं राजकवि ,सूत्रधार ,अफसर आदि रूपों में सामने आता है। एक युवती एक साथ छः रूपों में अभिनय करती है। 'रस गन्धर्व ' के अतिरिक्त बुलबुल सराय (१९७८),खेला पालमपुर (१९७९) में भी एब्सर्ड नाटक के तत्व विद्यमान हैं।

सत्यब्रत सिन्हा -- सत्यब्रत सिन्हा हिंदी नाट्य परम्परा के महत्वपूर्ण नाटककार हैं। 1974 में प्रकाशित 'अमृत पुत्र 'उनका असंगत नाटक है जिसमें अवकाश प्राप्त व्यक्ति के संत्रास एवं उसकी सार्थकता की खोज है। यह नाटक लक्ष्मीकांत वर्मा के असंगत नाटक 'रोशनी एक नदी है ' से काफी मिलता -जुलता है। वर्मा जी रोशनी को नदी मानते हैं ,जो कभी खत्म नहीं होती और सिन्हा जी आदमी को 'अमृत पुत्र 'कहते हैं जो कभी मरता ही नहीं। प्रस्तुत नाटक में डॉ गोयल , खुराना ,हरनाम दास ,मिस पाल ,मिस नरुला प्रमुख हैं। नाटक में नाटककार ने युवा पीढ़ी और पुराणी पीढ़ी के संघर्ष को रेखांकित करने का प्रयास किया है। आज के इस तीव्र परिवर्तनशील समाज में जिसे हम भौतिकतावादी युग भी कह सकते हैं। युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के विचारों को एक सिरे से ख़ारिज करती है और पुरानी पीढ़ी भी नई पीढ़ी के विचारों को अस्वीकार करती है। नाटक में व्यक्ति की चंचलता और अस्थिरता को नाटककार प्रस्तुत करता है बुढ़ापे में भी व्यक्ति अपने आपको युवा मानता है और स्त्री के प्रति प्रेम को ,उसे पाने की अभिलाषा को ,खोना नहीं चाहता है। नाटक में इन्ही विसंगतियों को नाटककार ने उभारने का प्रयत्न किया है। इस नाटक में प्रयोग की विशेषता है। संवाद विसंगत ही नहीं मार्मिक और आक्रामक भी हैं। [30]

मुद्राराक्षस -- हिंदी एब्सर्ड नाट्य परम्परा में मुद्राराक्षस का विशिष्ट स्थान है। उनके एब्सर्ड नाटकों में प्रकृतवाद और अभिव्यंजनावाद का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। मुद्राराक्षस के अधिकांश नाटकों के कथ्य हिंसा, आदिम मानवीयता ,सेक्स ,विद्रोह,सत्ता के प्रति आक्रोश, उत्पीड़न ,मृत्युबोध आदि है। उनके नाटकों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनमें

विचारोत्तेजकता जरूर है किन्तु नाटकों में वे स्थितियां विध्यमान नहीं हैं जो भारतीयता के अनुरूप हो। तिलचट्टा घोर आतंकित मनोदशा का प्रतीक है।

तेंदुआ -- यह असंगत शैली का नाटक है। इसका प्रकाशन 1975 में हुआ था। जीवन की विसंगतियों को यह नाटक बड़ी ही क्रूरता के साथ प्रस्तुत करता है। नाटक में निम्न और उच्च वर्ग के बीच के फासले को बिलकुल नये ढंग से रेखांकित किया गया है। उच्च अधिकारी और मजदूर वर्ग के बीच के असंगति की त्रासदी को दिखाना ही नाटककार का उद्देश्य है। मुद्राराक्षस इस नाटक के लिखने के पीछे की कहानी बताते हुए कहते हैं -" तेंदुआ की रचना के पीछे एक छोटी सी घटना है। घटना का बयां मेरे अभिनेता मित्र कुलभूषण खरबंदा ने किया था। किसी नाटक का मंचन समाप्त करने के बाद कुलभूषण और राजा लौट रहे थे कि रास्ते में गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गई। दोनों बुरी तरह घायल हो गये थे। उसी आधी रात के वक्त असहाय ,घायल नीम बेहोशी में उन्होंने सुना - कोई एक गाड़ी उधर से गुजरी ,ठिठकी ,किसी लड़की ने पूछा -क्या हुआ ? शायद गाड़ी में ही किसी दूसरे ने कहा - एक्सीडेंट। लड़की की आवाज आई -हाय वी मिस्ड द थ्रिल। गाड़ी आगे बढ़ गई। नाटक का आधार एक छोटा सा फिकरा ही है। [31] लड़की के संवाद 'वी मिस्ड द थ्रिल 'को मुद्राराक्षस ने नाटक के रूप में रेखांकित करने का प्रयास किया है। किसी की पीड़ा आज के समाज में थ्रिल (रोमांच) का कार्य कर रही है। यह अपने आप में ही असंगत है। नाटक में पुलिस कमिश्नर भूषण राय की पत्नी रेनु राय को जंगली आदमी (ब्रूट) देखने का शौक है। भूषण राय जब उनसे यह बताते हैं कि जिन लोगों से वह माली का काम करवाते हैं वे दरअसल ब्रूट हैं। रेनु उस आदमी (ब्रूट ,पशुवत आदमी) को देखने को आतुर हो उठती है और कहती है -" राम तुम इतने बड़े हाकिम हो एक ब्रूट पकड़ कर नहीं ला सकते ? एक जंगली आदमी ? मैं देखना चाहती हूँ -राम प्लीज -देखों न मदान सिर्फ इनकम टैक्स कमिश्नर हैं। मिसेज मदान के लिए उसने इंडोनेशिया से काला तेंदुआ मंगा दिया है। राम ----आई वांट ए ब्रूट ----आई वांट ए ब्रूट --आई वांट टू सी हिम --ब्रूट कैसा होता है राम--कैन यू गेट मी वन प्लीज – "[32] विवश होकर मिस्टर राय अपनी पत्नी को ब्रूट सौप देते हैं। मिसेज राय उसके साथ कई तरह की यातनाएं देकर यह देखती -परखती हैं कि उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। उसको यातना देना उनको इतना अच्छा लग रहा है कि वे अपनी मित्र मिसेज मदान को भी बुला कर दिखाती हैं जिस तरह मिसेज मदान अपने तेंदुए के साथ खेलती हैं ,उसे तंग करती हैं उसी तरह मिसेज राय भी उस आदमी के साथ करती हैं और अंत में वह मर जाता है। कथ्य में नवीनता जरूर है किन्तु विश्वसनीयता की कमी दिखती है। पूरी कथा अतिरंजिता से ओतप्रोत लगती है जो अप्राकृतिक और अमानवीय लगता है। तेंदुआ के बदले में आदमी को रखना तर्कसंगत प्रतीत नहीं

होता है। यद्यपि नाटक प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया है ,इसके कई मायने निकले जा सकते हैं। यह पूरी तरह दर्शक पर निर्भर करता है।

तिलचट्टा -- सन 1973 में प्रकाशित इस अंक हीन नाटक में कुल छः पुरुष पात्र एक स्त्री पात्र और एक तिलचट्टा है। तिलचट्टा एक प्रतीक के रूप में नाटक में प्रस्तुत है। मुद्राराक्षस इस संदर्भ में कहते हैं -" तिलचट्टा मानवीय नियति की ऐसी त्रासदी है जिसे निरंतर अपने मानवीय ऐतिहासिक आधार की तलाश है। नाटक में चरित्र नहीं ,यह त्रासदी ही प्रमुख है ,सत्य है त्रासदी ही एक प्रामाणिक इकाई है जिससे इस रचना का नाटकीय इतिहास बनता है। प्रारम्भ से अंत तक यह त्रासदी ही है जो लगातार मंच पर रहती है। बाकि सब कुछ पात्र ,प्रतीक ,देश, काल, घटनाएं सब सिर्फ उसकी वहां मौजूदगी को प्रमाणिकता देने वाले दस्तावेज हैं। "[33] तिलचट्टा मूलतः एक डाक्यूमेंट्री है जिसमें त्रासदी के मानवीय ऐतिहासिक आधार की खोज नाटककार करता है।

योअर्थ फेथफुली --इस नाटक का प्रकाशन 1974 में हुआ। इसमें सात पुरुष और एक स्त्री पात्र है। सम्पूर्ण नाटक एक ही दृश्य बंध में चित्रित है। यह नाटक अंक विहीन है। इसका सर्वप्रथम मंचन बृजमोहन शाह के निर्देशन में 1972 में हुआ था। नाटक का कथ्य आफिस के अनेक पहलुओं पर आधारित है जिसमें क्लर्क ,चपरासी ,स्टेनोग्राफर की रोजमर्रा की जिंदगी जीवंत रूप में रेखांकित है। नाटक देख कर या पढ़ कर वर्तमान समय के दफ्तर के यथार्थ का अंकन बड़ी सहजता के साथ किया जा सकता है। मुद्राराक्षस के इस नाटक में अवास्तविक परिस्थितियां उतनी नहीं है जितना की अन्य असंगत नाटकों में देखने को मिलती है। क्लर्क का समय से कुछ न लेना देना, न होना ,स्टोनों की विवशता ,अफसर का अनुचित लाभ उठाना सब सहज और यथार्थ ही लगता है। हा कुछ ऐसे दृश्य भी है जिन पर विश्वास करना संभव नहीं होता जैसे दफ्तर में मेज के नीचे बड़े साहब और स्टोनों का एक साथ सोना ,स्टोनों और उसके पति का एक ही दफ्तर में पांच साल से काम करते हुए भी किसी को यह न पता चलना की वे विवाहित हैं।

संक्षेप में कहा जाये तो मुद्राराक्षस के असंगत नाटकों के कथ्य और शिल्प अन्य असंगत नाटककारों से भिन्न हैं। डॉ गोविन्द चातक के शब्दों में -" उपहास ,तिरस्कार या अवज्ञा -सभी मुद्राराक्षस के नाटकों पर (डर्टी विशेषण के बिना) लागू होते हैं। उनके नाटक संभव है ' अकारण गुस्सा करने वाली भाषा ' का भ्रम पैदा करे। " [34]

हिन्दी के अन्य असंगत नाटककार -हिंदी में असंगत नाटकों की परम्परा बहुत सुदीर्ण नहीं है। यद्यपि विश्व साहित्य में यह पहली विधा है जो सबसे पहले हिंदी में आई बाद में पाश्चात्य साहित्य में किन्तु असंगत नाटक लिखना और पाठकों के ह्रदय पटल पर प्रतिष्ठित करना अत्यंत दुष्कर कार्य था फिर भी असंगत नाटक का साहित्य भंडार काम नहीं है। अन्य असंगत नाटककारों में - ब्रजमोहन शाह -त्रिशंकु ,शह -ये मात। रमेश बक्षी -देवयानी का कहना ,तीसरा हाथी। हमीदुल्ला -उलझी आकृतियां ,दरिंदे। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना -बकरी। सुदर्शन मजीठिया - चौराहा। शांति मेहरोत्रा -एक और दिन ,ठहरा हुआ पानी। सुदर्शन चोपड़ा -अपनी पहचान। चंद्रशेखर -कटा नाख़ून। डॉ चंद्र -कृत कुत्ता। काशीनाथ सिंह -घोआस। सुशील कुमार सिंह - सिंहासन खाली है. दया प्रकाश सिन्हा -कथा एक कंस की। गिरिराज किशोर -प्रजा ही रहने दो। शम्भुनाथ सिंह -दीवार की वापसी। राजकमल चौधरी -भग्नस्तूप एक अक्षत स्तम्भ आदि महत्वपूर्ण हैं |

असंगत नाटक और परम्परागत नाटकों में मूल अन्तर -- परम्परागत एवं असंगत नाटक दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं किन्तु एक दूसरे से लगभग विपरीत भी हैं। इनमें महत्वपूर्ण अंतर निम्नवत है --

1 - परम्परागत नाटक में एक निश्चित कथानक होता है जिसके माध्यम से नाटककार पात्र और दर्शक के बीच आनंद स्थापित करता हुआ एक उद्देश्य की तरफ जाता है। जबकि असंगत नाटकों में कथानक का कोई महत्त्व नहीं होता है। उसका मूल स्वर निराशावादी होता है और समाज की विद्रूपताओं को विसंगतियों के माध्यम से जनता के मध्य रखने का प्रयत्न करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि असंगत नाटककार कथ्य ,भाषा ,पात्र -चरित्र -चित्रण ,संवाद ,देशकाल, अभिनेयता, उद्देश्य, सभी दृष्टियों से परम्परागत नाटक से अलग होता है। परम्परागत नाटकों की कथा में प्रारम्भ मध्य और अंत होता है। किसी समस्या पर लिखा गया नाटक अंत में उस समस्या के समाधान की ओर पहुँच जाता है किन्तु असंगत नाटक में कथा कहीं से प्रारम्भ होकर कही भी समाप्त हो सकती है। अर्थात असंगत नाटक कथा विहीन होते हैं।

2- परम्परागत नाटकों में चरित्र की परिकल्पना श्रेष्ठ होती है नाटक किसी श्रेष्ठ पात्र को लेकर लिखे जाते हैं, किन्तु असंगत नाटकों में पात्रों की परिकल्पना ही शून्य है, न नायक न खलनायक। इनके पात्र ऊबे ,थके ,बीमार, उचक्के ,लम्पट और विक्षिप्त भी हो सकते हैं। जैसा विपिन कुमार अग्रवाल के नाटक 'तीन अपाहिज ' के तीनों पात्र अपाहिज हैं।

3 - संवाद योजना की दृष्टि से भी असंगत नाटक परम्परागत नाटक से भिन्न हैं । परम्परागत नाटकों के संवाद अर्थपूर्ण एवं पात्रों के चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं ,जबकि असंगत नाटक के संवाद अर्थहीन और उल -जलूल होते हैं। इन नाटककारों का मानना है की उनके संवाद और भाषा दोनों सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं से जन्म लेते हैं। जैसा समाज का चरित्र है, कथन है वैसे ही नाटक में प्रस्तुत है। भाषा भी पारम्परिक नहीं है क्योंकि पारम्परिक भाषा जिसे हम श्रेष्ठ भाषा कहते हैं उसका समाज में कोई स्थान नहीं है। मूल्यों के विघटन के साथ भाषा का भी विघटन हो चुका है ,ऐसा असंगत नाटककार मानते हैं। इसीलिए वे हरकत की भाषा का प्रयोग करते हैं जिसमें भाषा के साथ शरीर भी झोकना पड़ता है।

4 - परम्परागत नाटकों में देश काल वातावरण का विशेष ध्यान दिया जाता है,किन्तु असंगत नाटकों में इस ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जाता है। भाषा शैली की दृष्टि से भी असंगत नाटक परम्परागत नाटक से भिन्न हैं । इन नाटकों में शब्द कम और हरकत अधिक होती है। जीवन की विसंगतियों ,खोखलेपन को उजागर करने के लिए भाषा की नहीं हरकत की आवश्यकता होती है। कभी -कभी मौन भाषा का उपयोग भी असंगत नाटककार करता है।

5 - परम्परागत नाटकों का उद्देश्य उपदेशात्मक और महान होता है, जबकि असंगत नाटकों का उद्देश्य जीवन की विसंगतियों -बिडंबनाओं ,समाज की विद्रूपताओं ,व्यक्ति के खोखलेपन ,ऊब निराशा ,कुंठा ,अजनबीपन और संत्रास को दिखाना ही होता है। इसके अतिरिक्त असंगत नाटककार वेशभूषा और अभिनय को भी विशेष महत्त्व नहीं देता है। असंगत नाटककारों ने मनुष्य जीवन को देखने और परखने के सारे स्रोत ही बदल दिये। कमलेश्वर के शब्दों में -" इसमें सक्रिय की जगह निष्क्रिय ने ले ली ,सार्थक की जगह निर्थक ने ,इतिहास की तत्कालियता ने या समसामयिकता ने, पात्रों की विपात्रों ने ,घटना की अघटना या घटना हीनता ने ,समस्याओं की समस्या हीनता ने,चमत्कार की ऊब ने और व्यंग की विद्रूपता ने। " [35] परम्परागत और असंगत नाटकों के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध पाश्चात्य नाट्य आलोचक मार्टिन एसलिन ने लिखा है -एब्सर्ड एवं परम्परागत नाटक के मुहावरे में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ परम्परागत नाटक वाह्य विश्व का वस्तुनिष्ठ चित्रण करने का प्रयत्न करता था ,वही एब्सर्ड नाटक मनोदशाओं के रूपकों को मंच पर पेश करने की कोशिश करता है। एतएव पारम्परिक नाटक कथा कहता है, एब्सर्ड नाटक रूपकों अथवा बिम्बों का पैटर्न विकसित करता है। "[36]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है की हिन्दी नाट्य परम्परा में असंगत नाटक एवं नाटककारों का विशेष महत्त्व है। यद्यपि परिमाण की दृष्टि से कम हैं फिर भी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नवीन होने के कारण महत्वपूर्ण हैं|

सन्दर्भ ग्रंथ

[1] आधुनिकता के पहलू -विपिन कुमार अग्रवाल , पृष्ठ 107

[2] वृहत हिन्दी कोश -पहला भाग -सं० हरदेव बाहरी ,पृष्ठ 10

[3] मानक अंग्रेजी हिंदी कोश -सं० सत्य प्रकाश एवं बलभद्र प्रसाद मिश्रा ,पृष्ठ 07

[4] मानक हिंदी कोश -पहला खंड -सं० रामचंद्र वर्मा ,पृष्ठ 99

[5] रंगमंच कला और दृष्टि -डॉ० गोविन्द चातक ,पृष्ठ 105

[6] समकालीन हिंदी नाटककार -डॉ० गिरीश रस्तोगी ,पृष्ठ 148

[7] वही ,पृष्ठ 148

[8] असंगत नाटक और रंगमंच -सं० डॉ० नर नारायण राय ,पृष्ठ 97

[9] हिंदी नाट्य : प्रयोग के सन्दर्भ में -डॉ० सुषमा वेदी ,पृष्ठ 246

[10] मुद्राराक्षस के असंगत नाटक एक अनुशीलन - जयवंत रघुनाथ राव जाधव ,पृष्ठ 28

[11] असंगत नाटक और रंगमंच -सं० नर नारायण राय , मणि मधुकर का लेख -निःसंग होती दुनिया के असंगत नाटक ,पृष्ठ 17

[12] असंगत नाट्य शैली -सं० नर नारायण राय , लेख - मदन मोहन माथुर ,पृष्ठ 57

[13] - वही ,पृष्ठ 19

[14] आधुनिकता के पहलू -विपिन कुमार अग्रवाल ,पृष्ठ 98

[15] समकालीन हिंदी नाटककार -डॉ० गिरीश रस्तोगी ,पृष्ठ 155

[16] कारवां तथा अन्य एकांकी - भुवनेश्वर प्रसाद -भूमिका -विपिन कुमार अग्रवाल पृष्ठ 5

[17] हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा - डॉ० जयदेव तनेजा ,पृष्ठ 342

[18] कारवां तथा अन्य एकांकी -भुवनेश्वर प्रसाद ,भूमिका पृष्ठ 10

[19] वही ,पृष्ठ 12 -13

[20] वही ,पृष्ठ 167

[21] विपिन कुमार अग्रवाल रचनावली -सं० श्रीमती शीला अग्रवाल ,पृष्ठ 71

[22] आधुनिकता और हिंदी साहित्य -सं० डॉ० इंद्रनाथ मदान ,पृष्ठ 125

[23] समकालीन प्रयोगशील रंगमंच के विविध आयाम -डॉ० सुषमा वेदी ,पृष्ठ 251

[24] विपिन कुमार अग्रवाल रचनावली -सं० श्रीमती शीला अग्रवाल ,पृष्ठ 71

[25] रोशनी एक नदी है -लक्ष्मीकांत वर्मा -पृष्ठ 4

[26] समकालीन हिन्दी नाटक - डॉ० गिरीश रस्तोगी ,पृष्ठ 170

[27] ठहरी हुई जिंदगी - लक्ष्मीकांत वर्मा -पृष्ठ 6

[28] लक्ष्मीकांत वर्मा -चुनी हुई रचनाएँ -खंड तीन ,सं० कृष्णदत्त पालीवाल ,पृष्ठ 13 -14

[29] रोशनी एक नदी है -लक्ष्मीकांत वर्मा ,पृष्ठ 1

[30] हिंदी नाटक इतिहास के सोपान -डॉ० गोविन्द चातक ,पृष्ठ 164

[31] रंग भूमिकाएं - मुद्राराक्षस ,पृष्ठ 34

[32] तेंदुआ - मुद्राराक्षस ,पृष्ठ 34

[33] तिलचट्टा - मुद्राराक्षस ,पृष्ठ 62

[34] हिंदी नाटक : इतिहास के सोपान - गोविन्द चातक ,पृष्ठ 162

[35] असंगत नाटक और रंगमंच -सं० नर नारायण राय -कमलेश्वर का लेख -असंगत नाटक : युद्धों के अवशेष और दस्तावेज ,पृष्ठ 74

[36] नाट्य और रंगमंच -सं० शिवराम माली / डॉ० सुधाकर गोकाकर -डॉ० चंद्र लाल दुबे अभिनन्दन ग्रन्थ ,डॉ० केशव मुतालिक -अनुवाद -डॉ० सूरज प्रसाद, मिश्रा का अमरीकी रंगमंच ; एक सिंहावलोकन (लेख) पृष्ठ 74